इकाई 13 रवीन्द्रनाथ टैगोर

इकाई की रूपरेखा

13.1 प्रस्तावना

13.2 स्वतंत्रता और आत्म-अनुभूति का सिद्धान्त

13.3 मानव विवेक पर बल

13.4 राष्ट्रवाद की आलोचना

13.5 गांधी के साथ मतभेद

13.6 बोल्शेविक विचारधारा का विश्लेषण

13.7 सारांश

13.8 अभ्यास प्रश्न

13.1 प्रस्तावना

रवीन्द्रनाथ टैगोर (1861-1941) भारत के एक उत्कृष्ट साहित्यिक व्यक्तित्व थे जिन्होंने समकालीन विश्व में मानव चिंतन पर अत्यधिक प्रभाव डाला। उनका यह प्रभाव राजनीतिक क्षेत्र के साथ-साथ महत्वपूर्ण अवधारणाओं जैसे राष्ट्रवाद, स्वतंत्रता, मानव तर्कशक्ति (human rationality) और महात्मा गांधी (1869-1948) के दर्शन तथा कार्यनीतियों के साथ उनके अनेक मतभेदों में स्पष्ट दिखाई पड़ता है।

गांधी राजनीतिक और सामाजिक आन्दोलनकारी थे तथा टैगोर एक कवि थे। फिर भी उनके प्रमुख राजनीतिक विषयों की अभिव्यक्ति में महत्वपूर्ण समानता थी जिसे दोनों ने अपने समय की प्रमुख घटनाओं पर प्रतिबिम्बित करने में विकसित और परिष्कृत किया। इसके अतिरिक्त, टैगोर में मानव पूर्णता और विशेषता के लिए एक कवि की जिज्ञासा थी और उनकी अभिव्यक्ति मानव भावना और आशावाद (optimism) में उनके विश्वास का अर्थपूर्ण निवेदन थी जिसके द्वारा मानव स्वतंत्रता की अनुभति करने और उन सभी कृत्रिम बंधनों को तोड़ने के विषय में सोच सकता था जो बरसों से बनाए हुए थे। पूर्वग्रहों (prejudices) और घृणा पर बने ये बंधन मानव संपूर्णता का मार्ग प्रशस्त करने के लिए सुंदर और सौहार्दपूर्ण अंतिम लक्ष्य को प्राप्त करने तथा मानव सृजनात्मकता को फलने-फूलने एवं मानव गरिमा की विजय को प्राप्त करने के मार्ग में बाधा थे। पश्चिमी विचारों को पूर्वी विचारों के साथ आत्मसात् (मिलाने) करने की आधुनिक भारतीय परम्परा जो राममोहन राय से आरंभ हुई थी, टैगोर के साथ अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गई थी।

13.2 स्वतंत्रता और आत्म-अनुभूति का सिद्धान्त (THEORY OF FREEDOM AND SELF-REALISATION)

स्वतंत्रता का विशिष्ट भारतीय विचार जो राजा राममोहन राय से विकसित होना आरंभ हुआ था, बाद में स्वामी विवेकानन्द (1863-1902), अरविंद घोष (1872-1950), गांधी और टैगोर द्वारा अभिव्यक्त किया गया। राममोहन भारतीय और पश्चिमी विचारों को अपनी परम्परा की दृढ़ प्रतिबद्धता के साथ मिलाना चाहते थे। विवेकानन्द भी राममोहन की तरह ही भारतीय परम्परा से जुड़े थे। अरविंद, गांधी

और टैगोर ने व्यक्ति की पहचान और संस्कृति खोए बिना सौहार्द पर बल दिया।

टैगोर के लिए स्वतंत्रता केवल राजनीतिक मुक्ति (political emancipation) के लिए ही नहीं थी बल्कि ब्रह्मांड (विश्व) के साथ व्यक्ति के मिलन में थी जो उनके गीत - *इस वायु में आकाश में और ब्रह्मांड के इस प्रकाश में मेरी स्वतंत्रता* (*My freedom is in this air, in the sky and in the light of universe)* अभिव्यक्त हुई हैं। उन्होंने प्रमुख रूप से बताया कि कई राष्ट्र और लोग शक्तिशाली तो थे परन्तु स्वतंत्र नहीं थे क्योंकि स्वतंत्रता 1 अनुभूति बाध्यकारी शक्ति (coercive power) का केवल प्रयोग करने से कुछ बिल्कुल अलग थी। जीवन की दशा और दृष्टिकोण के कारण मनुष्य अपना सर्वोत्तम विकास करना चाहता है। मानव, इस महान ब्रह्मांड के एक भाग के रूप में केवल तभी स्वतंत्रता का उपयोग कर सकता है जब वह विश्व के साथ अपने संबंधों को स्थापित कर ले। यह एकता का बंधन है जबकि सत्ता (शक्ति) विघटन (disunity) उत्पन्न करती है अर्थात् एकता तो तोड़ती है।

टैगोर की स्वतंत्रता की अवधारणा पर अभिव्यक्तिवाद [(expressionism) (1910-24)] और अर्नेस्ट बार्कर, मेरी फोलेट तथा लास्की का प्रभाव पड़ा जिन्होंने लोकतंत्र के सफल संचालन के लिए बहुल समाज (plural society) को एक बुनियादी पूर्व शर्त बताया था। टैगोर इलियट के आधुनिक समाज के उस विचार से सहमत थे जिन्होंने आधुनिक समाज को यांत्रिक (मशीनी) और खोखला समाज माना जो सृजनात्मक मानवीय भावना और ऊर्जाओं को व्यर्थ कर देता है। उन्होंने ऐसी स्वतंत्रता की इच्छा की जो मानव को उसके विचारों और आकांक्षाओं की अनुभूति कराने में सफल होगी क्योंकि इसने विवेक और वैज्ञानिक दृष्टिकोण की सहायता से विभिन्न प्रकार की सृजनात्मक कला में अभिव्यक्ति पाई है तथा इससे मानव मुक्ति के लिए उद्योगीकरण (industrialisation) की क्षमताओं का भी प्रयोग हो सकेगा।

टैगोर को *सत्यम्, शिवम्, अद्वैतम्* (truth of goodness and unity) के *उपनिषद्* सिद्धान्त का मार्गदर्शन मिला तथा वे महिमामंडन (प्रशंसा) और शक्तिशाली राष्ट्रों द्वारा शुरू किए गए विस्तारवाद (expansionism) के दर्शन से पूरी तरह असहमत थे। इसका पता उनकी दो प्रतीकात्मक रचनाओं (symbolic works) *रक्ताकोराबी* और *मुक्तधारा* में चलता है। परन्तु रसल की तरह उन्होंने मानव में अपने विश्वास को बनाए रखा जो उनकी *रसियार चिठी* और *अफ्रीका* से पता चलता है जिसमें राष्ट्रीय सीमाओं और मूलवंशों को पार करने वाले समाजवाद, लोकतंत्र, स्वतंत्रता और सामाजिक न्याय को स्पष्ट वरीयता दी गई है।

टैगोर के लिए व्यक्ति की स्वतंत्रता मानव सभ्यता और प्रगति के विकास का आधार थी। यह व्यक्ति के लिए महान विश्व के साथ सामंजस्य स्थापित करने की आंतरिक आवश्यकता भी थी। स्वतंत्रता मानव मस्तिष्क और आत्मा में सृजनात्मक और स्वाभाविक होती है। इसमें बेहतर व्यवस्था सृजित करने की क्षमता है। टैगोर निर्विवाद अनुरूपता (unquestioned conformity) के विरुद्ध थे, जिसे उन्होंने, "दासता की अवस्था कहा जो कैंसर का विकृत रूप ले लेती है और मानवता जिसके अधीन हो जाती है।" व्यक्ति के कार्य में विश्वास करने वाले टैगोर ने किसी कार्य के अंतिम रूप को अस्वीकार कर दिया और जोर दिया कि व्यक्ति की मुक्ति (salvation) और नैतिक प्रगति के अनेक मार्ग हैं। उन्होंने इतिहास को परम सत्य की अनुभूति माना और इसके माध्यम से व्यक्ति स्वयं को अभिव्यक्त कर पाता है और अंत में पूर्णरूप से स्वतंत्र और संतुष्ट मानव का उदय होता है। उन्होंने आइंस्टीन से कहा था कि उनका धर्म मानव धर्म है। उनका अन्वेषण शाश्वत था और यह उन उदार तथा मानवोचित विचारों के कारण है जिनसे सभ्यता अर्थग्रहण करती है।

पूर्व भारतीय उदारवादियों की तरह ही टैगोर ने भारत की वास्तविक समस्या को राजनीतिक नहीं बल्कि सामाजिक माना। राजनीतिक स्वाधीनता (स्वतंत्रता) का संकीर्ण दृष्टिकोण एक अच्छे समाज की स्थापना करने में बहुत ज्यादा पर्याप्त नहीं होगा क्योंकि इससे व्यक्ति नैतिक और धार्मिक स्वतंत्रता से वंचित रह जाएगा। उन्होंने इस संकीर्ण दृष्टिकोण को प्रदर्शित करने वाले स्वतंत्र देशों को भी फटकार लगाई। केवल राजनीतिक स्वतंत्रता किसी भी व्यक्ति को स्वाधीन नहीं कर सकती क्योंकि समाज में फूट और कमजोरियाँ राजनीति के लिए खतरा उत्पन्न कर देती हैं। एक औसत व्यक्ति में विश्वास उत्पन्न किए बग़ैर, वह हमेशा नीचा महसूस करेगा और "अन्यायपूर्ण अत्याचार" होता रहेगा। विश्व में प्रत्येक व्यक्ति में पहचान और गौरव की भावना का संचार करके आधार को व्यापक बनाकर स्वतंत्रता की अनुभूति करने की अनिवार्यता पर बल दिया। टैगोर की अमूर्त व्यक्ति पर बल देने वाली यह अवधारणा स्वतंत्रता के उन अन्य लोकप्रिय राजनीतिक सिद्धान्तों से अलग थी।

13.3 मानव विवेक पर बल (EMPHASIS ON HUMAN REASON)

सभ्यतार संकट अथवा *क्राइसिज इन सिविलाइजेशन* (crisis in civilisation) में उन्होंने अंग्रेजी साहित्य की मानवतावादी परम्परा (humanistic tradition) की प्रशंसा का उल्लेख किया जिसने आधुनिक सभ्यता में उनके विश्वास का निर्माण किया। उन्होंने स्वीकार किया कि बाहरी विश्व से भारत का संपर्क अंग्रेजों के आगमन से स्थापित हुआ तथा साथ ही बुर्के, मैकाले, शेक्सपीयर और बायरन का उल्लेख किया जिन्होंने मानव की विजय को प्रेरणा प्रदान की एवं विश्वास उत्पन्न किया। भारतीयों ने स्वतंत्रता चाही परन्तु अंग्रेज़ी उदारता (generosity) और अंग्रेज़ों के चरित्र में विश्वास किया जो सार्वभौम (विश्व) बंधुता के उनके दर्शन को दर्शाता है। अन्य समकालीन भारतीय चिंतकों की भांति, टैगोर का भी विश्वास था कि भारत सामान्य रूप से पश्चिम के और विशेष रूप से ब्रिटेन के अपने संपर्क से लाभ उठा सकता हैं। उन्होंने भारत पर अंग्रेज़ों की विजय को आधुनिकता की विजय माना।

टैगोर ने न केवल इस बात का उल्लेख किया कि एक युवक के रूप में वे किस प्रकार जॉन ब्राइट से प्रभावित हुए बल्कि उन्हें यह दुःख भी हुआ कि भारतीय उस औद्योगिक शक्ति से भी वंचित रह गए जिसने ग्रेट ब्रिटेन को विश्व शक्ति बना दिया। उन्होंने भारत में आधुनिकता और वैज्ञानिक मनोवृत्ति (scientific temper) की ओर भी इशारा किया जो एक ऐसा अभाव था जो पश्चिम के संपर्क से पूरा किया जा सकता था, इस प्रकार उन्नीसवीं शताब्दी यूरोप के साथ एक सहयोग का युग बन जाएगी। परन्तु बीसवीं शताब्दी में यूरोप स्वयं अपने मानदंड (कसौटी) के कारण विफल हो गया क्योंकि यह अपनी सभ्यता के गुणों को दूसरों को देने में सफल नहीं हो सका। इस संदर्भ में टैगोर ने सोवियत शासन के स्वरूप और उद्देश्य के साथ ब्रिटिश शासन के स्वरूप और उद्देश्य के बीच एक दिलचस्प विरोधाभास प्रस्तुत किया। ये ऐसी दो शक्तियाँ थीं जिन्होंने विभिन्न जातियों (races) पर शासन किया। ब्रिटेन ने अपने शासन द्वारा अधीन जातियों को आज्ञाकारी बनाया जबकि सोवियत उन्हें शक्तिशाली बनाने का प्रयास कर रहे थे। भारत ने पश्चिम की क्षमता का तो अनुभव किया परन्तु स्वतंत्रता प्रदान करने वाली उसकी शक्ति का अनुभव नहीं किया। अंग्रेज़ों की सरकारी नीति ब्रिटेन के सी.एफ. एंड्रूज जैसे श्रेष्ठ व्यक्ति के अत्यंत विरुद्ध थी जो कि एक अद्भुद व्यक्ति थे तथा उन्होंने मानवता में और मानव विवेक और स्वतंत्रता के अपने विश्वास को सुदृढ़ किया (टैगोर, 1961: 414)

13.4 राष्ट्रवाद की आलोचना

दोहरी भूमिका की टैगोर की अवधारणा, एक सकारात्मक, "पश्चिम की भावना" और दूसरी नकारात्मक "पश्चिम का राष्ट्र" राष्ट्रवाद के उनके विश्लेषण का एक आरंभिक बिन्दु था जो पश्चिम में विकसित हुआ था (टैगोर, 1976:11)। उन्होंने साहित्य और कला के क्षेत्र में पश्चिम का आभार व्यक्त किया जिसे उन्होंने इसकी एक करने की शक्ति के संदर्भ में विशाल बताया .... जिसने ऊँचाई और ब्रह्मांड की गहराई को स्पर्श किया तथा उन उत्कृष्ट व्यक्तियों का भी उल्लेख किया जो मानवता की भलाई के लिए संघर्ष कर रहे थे। परन्तु इस परोपकार के पीछे अहितकारी पहलू भी है - "लक्ष्य के लिए महानता की अपनी समस्त शक्ति का प्रयोग करते हुए, जो मनुष्य में अनंतता और शाश्वतता के विरुद्ध हैं।" (टैगोर वही: 39-40) उन्होंने इस परस्पर-विरोध को राष्ट्र-राज्य (nation-state) के लिए बीमारी बताया। जो देश समस्त लोगों के संगठित स्वार्थ (स्व-हित) को व्यक्त करता है वह न्यूनतम मानवीय और न्यूनतम आध्यात्मिक है तथा समकालीन विश्व में सबसे बड़ी बुराई है। इसने "शक्ति (सत्ता) की सभ्यता" निर्मित की (टैगोर वही: 8) जिसने इसे विशिष्ट, अंहकारी और अभिमानी बना दिया। इसके प्रदर्शन का एक रूप लोगों का उपनिवेशन (colonisation) तथा उनका शोषण करना था और उन्हें कष्ट में रखना था। इस संदर्भ में टैगोर ने जापान का उदाहरण दिया जिसमें पश्चिमी सभ्यता के पश्चिम के प्रभुत्व में रहे बग़ैर अधिकतम संभव सीमा तक लाभ प्राप्त किए। टैगोर ने राष्ट्र को "राजनीति और वाणिज्य के संगठन" के सिवाय कुछ नहीं माना (टैगोर वही: 7)। सफलता पर इसके जोर दिए जाने के कारण, इसने इसे एक ऐसा यंत्र बना दिया जिसने सामाजिक जीवन को बाधित किया और अच्छे जीवन के लक्ष्य को समाप्त कर दिया। उन्होंने उन अराजकतावादियों (anarchists) का हवाला दिया जिन्होंने व्यक्ति पर किसी भी प्रकार की सत्ता (शक्ति) थोपने का विरोध किया। उन्होंने इस आधार पर आतंक (terror) के संतुलन की विचारधारा को अस्वीकार कर दिया कि मानव की दुनिया एक नैतिक दुनिया है। उन्होंने सांप्रदायिक मतवाद (communal sectarianism) और राष्ट्रवाद की भर्त्सना की तथा अमूर्त विश्व राजनीति (विश्वबंधुता) की आलोचना की। बर्लिन (1977: **65)** ने लिखा कि

"टैगोर ने संकीर्ण कार्य का विरोध किया और वे कठिन सत्य के अपने दृष्टिकोण से विमुख नहीं हुए। उन्होंने अतीत से भावुक जुड़ाव की भर्त्सना की जिसे उन्होंने "खूंटे से बंधा बलि के बकरे की भांति" अतीत से जुड़ा भारत का प्रयास कहा था, और उन्होंने उन व्यक्तियों पर आरोप लगाया जिन्होंने इसे प्रदर्शित किया - ये लोग टैगोर को प्रतिक्रियावादी लगते थे जो यह नहीं जानते थे कि वास्तविक राजनीतिक स्वतंत्रता क्या है, उनका (टैगोर का) संकेत अंग्रेज़ चिंतकों और अंग्रेज़ी पुस्तकों की ओर था जिनसे राजनीतिक स्वाधीनता की अवधारणा प्राप्त हुई थी। परन्तु विश्व बंधुत्व के प्रतिकूल, उनका मानना था कि जिस प्रकार अंग्रेज़ अपने पैरों पर खड़े हुए हैं, उसी प्रकार भारतीयों को भी अवश्य खड़े होना चाहिए। उन्होंने 1917 में एक बार फिर "स्वामी (मालिक) की अटल इच्छा पर सब कुछ छोड़ने" के खतरे की निन्दा की "चाहे वह ब्राह्मण हों अथवा अंग्रेज हों"।

टैगोर ने वर्तमान परिदृश्य के लिए स्पष्ट रूप से दो सही विकल्प देखे; पहला, एक दूसरे के साथ संघर्ष करना जारी रखना और दूसरा "सामंजस्य और पारस्परिक सहायता के सही आधार" को खोजना (टैगोर वही: 60)। राष्ट्रवाद की इस प्रबल भर्त्सना को निश्चय रूप से प्रथम विश्व युद्ध से गति मिली। *राष्ट्र क्या है? [What is a Nation? (1901)]* में उन्होंने रेनन (1823-1892) के विचारों का विश्लेषण किया और साम्राज्यवाद को एक राष्ट्र की तार्किक परिणति के रूप में विशेष रूप में घोषित किया तथा मूलवंश (race), भाषा, व्यावसायिक हित, धार्मिक एकता तथा भौगोलिक अवस्थिति (geographical location) ने मानवता (human essence) का निर्माण नहीं किया। बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में उन्होंने

उदारवाद की कीमत पर संकीर्ण धार्मिक विश्वासों और आक्रामक राष्ट्रवाद के खतरों के प्रति सावधान किया और सर्वमुक्तिवाद (बंधुता) को एक प्रभावशाली विकल्प के रूप में प्रस्तुत किया जो *गीतांजली* सहित उनकी बाद की अनेक रचनाओं में दिखाई दिया।

प्रथम विश्व युद्ध के कारणों का विश्लेषण करते समय, टैगोर ने एशिया और अफ्रीका के यूरोपीय प्रभुत्व (आधिपत्य) के विषय में लिखा था। युद्ध का मूल कारण जर्मनी द्वारा उपनिवेशों की छीना-झपटी और विश्व का शासक और शासितों में विभाजन था। उन्होंने बहुत सही टिप्पणी थी कि जब इसी दर्शन (विचारधारा) को यूरोप के बाहर प्रचारित किया गया तो यूरोपवासियों ने इसकी कटुता को नहीं समझा परन्तु जब उनका इससे सामना हुआ, तो उन्हें बहुत कष्ट हुआ। उस समय जर्मनी की कार्रवाई कोई अनोखी नहीं थी परन्तु यूरोपीय सभ्यता का एक हिस्सा थी। उन्होंने पहले से ही सही-सही बता दिया था कि प्रथम विश्वयुद्ध अंतिम विश्वयुद्ध नहीं होगा और एक युद्ध होने की और संभावना होगी।

राष्ट्रवाद की टैगोर द्वारा की गई आलोचनाओं की तात्कालिक प्रतिक्रिया मिली-जुली हुई। अमेरिकन प्रेस का रवैया बिल्कुल विरोधी था। *दि डेटरायट जर्नल। (The Detroit Journal)* ने "ऐसे बीमार मीठे मानसिक जहर जिससे टैगोर हमारे विशाल संयुक्त राज्य के युवाओं के मस्तिष्कों को दूषित करना चाहते हैं, के प्रति लोगों को चेतावनी दी।" (कृपलानी उद्धृत 1961:139)। भारत में टैगोर के कुछ समकालीन व्यक्तियों ने उनकी टिप्पणी को अपवाद स्वरूप लिया। उदाहरण के लिए, *गदर* पार्टी के कुछ सदस्यों ने उनकी आलोचनाओं को "भारतीय राष्ट्रवाद की आकांक्षाओं के विश्वासघात" के रूप में समझा

टैगोर, एक ब्रिटिश एजेंट हैं और भारत को बदनाम करने के लिए उन्हें संयुक्त राज्य भेजा गया था। आरंभ में जापान में बुद्ध की धरती के एक कवि-मनीषी (seer) के रूप में उनका उत्साहपूर्ण स्वागत किया गया था। परन्तु अपने व्याख्यानों में उन्होंने पश्चिमी सभ्यता और राष्ट्र राज्य की उपासना की सत्ता की लालसा का अनुकरण करने के विरुद्ध चेतावनी दी जिसके लिए उनकी तीव्र आलोचना हुई। जब उन्होंने जापान को पश्चिम के केवल मानवोचित मूल्यों को अपनाने के लिए कहा तो उनकी लोकप्रियता गिर गई (कृपलानी उद्धृत वही:139)। परन्तु कुछ जापानी बुद्धिजीवी टैगोर के विचारों के महत्व को समझ गए (पोद्दार उद्धृत : 195)। युद्ध के बाद यह पता चल गया था कि राष्ट्रवाद पर टैगोर की टाइप की हुई प्रतियाँ पश्चिमी मोर्चे के सैनिकों में वितरित की गई थीं। ऐसा अनुमान था कि यह काम यूरोपीय शांतिवादियों (pacifists) का था। एक ब्रिटिश सैनिक मैक्स प्लोमन ने युद्ध के बाद स्वीकार किया कि उसने टैगोर की रचना पढने के बाद 1917 में सदा के लिए सेना छोड़ दी। रोलैण्ड ने 26 अगस्त, 1919 के एक पत्र में ऐसे ही विचार व्यक्त किए जैसे कि टैगोर ने व्यक्त किए थे।

आधुनिकता, विज्ञान और प्रौद्योगिकी तथा विवेक में यूरोप का नेतृत्व होने के कारण टैगोर ने यूरोपीय युग को आधुनिक युग कहा। परन्तु वे बराबर उसकी कमजोरियों जैसे सत्ता का अहंकार, शोषणकारी और प्रभुत्ववादी स्वरूप तथा सर्वोच्चता की इच्छा को जानते थे। यद्यपि टैगोर की धारणाएँ तेज़ी से बदल चुकी हैं परन्तु उनकी चिंताएँ (सरोकार) जैसे यूरो-केंद्रिकवाद (Euro-centricism) को स्वीकार न करना और सार्वभौम सभ्यता की मूल विशेषताओं को संचरित करने की इसकी अयोग्यता आज भी वैध नहीं हुई है।

13.5 गांधी के साथ मतभेद

गांधीजी के संपूर्ण राजनीतिक दर्शन का उल्लेख *हिन्द स्वराज* (1908) में और टैगोर का उल्लेख स्वदेशी समाज (1904) में मिलता है। दोनों का ही एक दूसरे के प्रति सम्मान था हालाँकि इस परस्पर सम्मान ने उन्हें भारतीय स्थिति में अपने-अपने समकालीन वास्तविकता के बोध और आन्दोलनों की

बुनियादी गतिविधियों के वांछित स्वरूप के बारे में नहीं रोका। दक्षिण अफ्रीका से गांधीजी के भारत लौटने और भारतीय राजनीति में उनके तेजी से ऊपर उठने के बाद ही उनके बीच विवाद उत्पन्न हुआ जिसकी परिणिति गांधीजी के असहयोग आन्दोलन और टैगोर की सर्वमुक्तिवाद (विश्व बंधुत्व) दर्शन (philosophy of universalism) की अभिव्यक्ति और प्रथम विश्व युद्ध के दौरान राष्ट्रवाद की आलोचना में हुई।

टैगोर भारत की मूल समस्या को राजनीतिक न मानकर सामाजिक मानते थे यद्यपि गांधीजी की भांति, वे भारतीय समाज में तीव्र मतभेदों और संघर्षों से परिचित थे। ऐसा समाज, न कि राजनीति, उनके आकर्षण का प्राथमिक क्षेत्र था। उनका विचार था कि विज्ञान की विजय ने पूरे देश को एक कर दिया था जिससे एकता प्राप्त करना संभव हो सका था जबकि यह एकता राजनीतिक एकता नहीं थी। इसी अवधारणा से वह इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि भारत इस संबंध में एक समाधान प्रदान कर सकता है क्योंकि "भारत के पास राष्ट्रवाद का वास्तविक ज्ञान नहीं है" (टैगोर वही: 64)। राष्ट्रवादी लहर के बारे में उनका विश्वास था कि यह स्वतंत्रता के लिए संघर्ष को लोकप्रिय बनाएगी परन्तु अपने विकास के समूचे संदर्भ में असृजनात्मक होगी क्योंकि स्वतंत्रता की खोज इसके कार्यान्वयन को जोखिम में डाल देगी।

टैगोर ने इस तर्क को गांधीवादी नेतृत्व और रणनीति की सावधानीपूर्वक जाँच करने के बाद विकसित किया। उन्होंने 1905 के बंगाल विभाजन के विरुद्ध आन्दोलन के दिनों में अपने पूर्व अनुभवों से इस मूल्यांकन का बुनियादी ढाँचा तैयार किया। टैगोर ने *रक्षाबंधन* और राष्ट्रपरक गीतों का प्रचार करने में सक्रिय भूमिका निभाई। *स्वदेशी समाज* के प्रकाशन के तुरन्त बाद उन्होंने कमजोर पड़ते गाँवों को पुनर्जीवन प्रदान करने और सामान्य लोगों के बीच नई जागरूकता पैदा करने का तुरंत आह्वान किया। आरंभ में यद्यपि वे आन्दोलन में सबसे आगे थे, परन्तु शीघ्र ही उनका मोह भंग हो गया क्योंकि उन्हें बहुत जल्दी पता चल गया कि जनजागरूकता की जरूरत के बारे में किसी को कोई सरोकार अथवा चिंता नहीं थी और शहरी मध्यम वर्ग अपने-अपने स्वार्थों को बचाने में लगे हुए थे। उन्होंने आन्दोलन से हटने के बाद तत्कालीन मौजूदा जमींदारी व्यवस्था के अंतर्गत ग्राम्य जीवन का पुनर्निर्माण करने का गंभीर प्रयास किया। गांधी के साथ उनके बुनियादी मतभेदों को समझने के लिए इस पृष्ठभूमि को जानना जरूरी है।

गांधी की प्राथमिकताओं और नीतियों के बारे में टैगोर का प्रथम लिखित प्रमाण मिलता है जिसके अनुसार उन्होंने *शांतिनिकेतन* से 12 अप्रैल, 1919 को एक पत्र लिखा था जिसमें गांधीजी को असहयोग आन्दोलन के बारे में सावधान किया गया था क्योंकि यह कार्यक्रम भारत की नैतिक श्रेष्ठता को व्यक्त नहीं करता था। उन्होंने भारतीय राजनीति में गांधी के उत्थान के साथ आए महत्वपूर्ण परिवर्तनों को भी ध्यानपूर्वक देखा। उन्होंने गांधी के नेतृत्व के बारे में भी बहुत तेजी से विचार किया और वह यह भी देख सके कि प्रस्तावित असहयोग आन्दोलन पूरे देश को अपनी चपेट में ले लेगा और यह बंगाल के विभाजन विरोधी आन्दोलन से बहुत बड़ा होगा। वे मौजूदा अवस्था और पूर्व अवस्थाओं के महत्वपूर्ण अंतर को भी समझ गए थे। पहले के नेताओं ने अंग्रेजी शिक्षित लोगों के अलावा नहीं देखा जबकि इसके विपरीत गांधी करोड़ों अनपढ़ भारतीयों के प्रवक्ता थे। वे उनकी भाषा बोलते थे और वैसे ही कपड़े पहनते थे। यद्यपि उनके विचार व्यावहारिक थे, परन्तु उनके विचारों में तार्किक और वैज्ञानिक प्रासंगिकता नहीं थी। उनके विचारों में राष्ट्र को जाग्रत करने का दर्शन नहीं था। सत्य के मार्ग का अनुसरण करने के बजाए, गांधी ने सरल रास्ते पर चलने का प्रयास किया।

बाद में टैगोर इस सच्चाई से दुखी हो गए कि प्रत्येक व्यक्ति एक ही आवाज में बोलता था और वैसे ही प्रयास करता था तथा इस विकास को उन्होंने राष्ट्रवाद की सबसे खराब अभिव्यक्ति कहा क्योंकि

इसे उन्होंने दासतापूर्ण मानसिकता बताया तथा इसे विदेशी शासन से कुछ लेना-देना नहीं था। उनका (टैगोर) सबसे ज्यादा विरोध इस बात से था कि गांधी के निर्देश जिनमें हाथ से सूत काटना और विदेशी कपड़े जलाना भी शामिल था, मध्यकालीन युग से जुड़े थे। इनमें से किसी भी शर्त का आलोचनात्मक रूप से विश्लेषण नहीं किया गया और इन्हें धर्म सिद्धान्त मान लिया गया। गांधी के निर्देशों का तर्कसंगत ढंग से अनुसरण न करके तेजी से अनुसरण कर लिया गया। टैगोर का मानना था कि सादगी पर बल देने से आर्थिक विकास धीमा पड़ जाएगा क्योंकि *स्वदेशी* के संकुचित स्वरूप से केवल सीमित प्रान्तीय दृष्टिकोण और पृथक्तावाद उत्पन्न होगा तथा शेष दुनिया में अनावश्यक वैमनस्य उत्पन्न हो जाएगा। गांधी की योजनाओं से भारत अलग-थलग पड़ जाएगा जिससे भारत को पश्चिमी ज्ञान और प्रगति से वंचित होना पड़ेगा।

गांधीजी से असहमति व्यक्त करते हुए, टैगोर ने कहा कि मध्य वर्ग और जो किसान भारत की आबादी का अस्सी प्रतिशत हैं और वे वर्ष में छह महीने बिना किसी उद्देश्यपूर्ण (सार्थक) व्यवसाय के बिना रहते हैं, उनके बेकार समय का अनुमान लगाना संभव नहीं है। उन्होंने आश्चर्य किया कि क्या चरखे के प्रयोग का प्रचार करना जरूरी है। इसके बजाय, उन्होंने रचनात्मक कार्यक्रमों जैसे सामूहिक कृषि पर जोर दिया क्योंकि उनका मानना था कि इससे छोटी अनुत्पादक जोतों (unproductive holdings) की दुर्दशा दूर हो जाएगी और गरीबी दूर की जा सकेगी। उनका विचार था कि गांधी का महिलाओं को अंग्रेजी पढ़ने से रोकने के लिए कहना गलत था तथा उन्होंने सरकारी स्कूलों के गांधीजी के बहिष्कार. के आह्वान का विरोध किया। यद्यपि टैगोर मौजूदा व्यवस्था के आलोचक थे, फिर भी उन्होंने महसूस किया कि बेहतर विकल्प के अभाव में इससे केवल अज्ञान, अंधविश्वास और पिछड़ापन बढ़ता रहेगा। 1928 में टैगोर ने *वर्णाश्रम* के गांधी के समर्थन की यह तर्क देकर आलोचना की कि यह व्यवस्था ठीक नहीं है क्योंकि व्यवसाय व्यक्ति की क्षमता अथवा योग्यता के अनुसार नहीं है बल्कि जन्म के अनुसार है। वंशागत व्यवसाय (hereditary occupations) यांत्रिक (मशीनी), आवृत्तिमूलक (एक जैसा अर्थात् बार-बार दोहराया जाने वाला) है तथा नए परिवर्तनों (नएपन) एवं मानव स्वतंत्रता में बाधा पहुँचाता है। इसी प्रकार उन्होंने 5 फरवरी, 1934 को बिहार में आए भूकंप के कारण के संबंध में छूआछूत पर गांधी के दावे को अस्वीकार कर दिया क्योंकि गांधीजी ये बताने में असमर्थ रहे कि क्यों केवल गरीबों और निम्न जातियों को ही उच्च जातियों की अपेक्षा अधिक नुकसान उठाना पड़ा। 20 मई, 1939 को कांग्रेस को लिखे एक पत्र में उन्होंने कांग्रेस में शक्ति की पूजा (worship of power) के विरुद्ध तब चेतावनी दी जब गांधी के कुछ अनुयायियों ने गांधी की तुलना मुसोलिनी और हिटलर से की जिससे पूरे विश्व में गांधी का अपमान हुआ। एक आवश्यक विकल्प के रूप में टैगोर ने "सार्वभौम मानवता के आग्रह का आह्वान किया और भारत के विस्तृत आयामों को उसके विश्व संदर्भ" में मान्यता प्रदान करने का आग्रह किया क्योंकि "अब कोई भी राष्ट्र जो स्वयं अलग-थलग होना चाहता है, वह समय की भावना के साथ संघर्ष में उलझ जाता है और उसे शांति नहीं मिलती। अब से, प्रत्येक राष्ट्र की सोच को अन्तरराष्ट्रीय होना पड़ेगा। इस विंश्व बंधुता को ध्यान में रखकर एक नए युग का विकास करने का प्रयास है।" (डाल्टन उद्धृत 1982: 202)।

इन आरोपों के उत्तर में गांधी ने उत्तर दिया कि "भारतीय राष्ट्रवाद न तो विशिष्ट है, न ही आक्रामक है और न ही विनाशकारी है। यह तो स्वास्थ्यप्रद और धार्मिक है, अतः मानवतावादी है। उन्होंने चरखे के प्रयोग का बचाव किया क्योंकि यह भारत के करोड़ो-करोड़ लोगों में अनिवार्य और एक रहने की अनुभूति करने का एकमात्र उपाय है। इसका उद्देश्य संपूर्ण राष्ट्र के लिए बलिदान" को व्यक्त करना है। प्रान्तवाद के संकीर्ण आरोपों और अपने राष्ट्रवाद के खतरों के आरोपों के संबंध में उन्होंने कहाः "मैं स्वतंत्र वायु में उतना ही बड़ा आस्थावादी हूँ जितना बड़ा एक कवि। मैं अपने घर को चारों ओर से घिरा हुआ नहीं चाहता हूँ और न ही अपनी खिड़कियों को बंद रखना चाहता हूँ। मैं चाहता हूँ कि

सब देशों (स्थानों) की संस्कृतियाँ, संभव हो सके तो मेरे घर को झकझोर दें। परन्तु मैं नहीं चाहता कि कोई मुझे अपने कदमों से डिगा दे।" इसके अतिरिक्त गांधी ने अपने राष्ट्रवाद को विशिष्ट नहीं समझा; "यह किसी अन्य देश को हानि पहुँचाने के लिए नहीं है बल्कि सही अर्थ में सबको लाभ पहुँचाने के लिए है। मेरे विचार में भारत की स्वतंत्रता विश्व के लिए कभी भी खतरा नहीं हो सकती।" (डालटन में उद्धृत, वही: 202-03)। टैगोर का भी सांस्कृतिक विविधता के लिए यही विचार था परन्तु वे संभव नुकसान और पतन की अपनी अवधारणा के लिए गांधी से ज्यादा सतर्क थे क्योंकि उन्होंने इसे 1905 में बंगाल के विभाजन के समय हुई बाद की घटनाओं में देखा था।

रोलैण्ड ने टैगोर के विद्रोह को गांधी के विरुद्ध "स्वतंत्र आत्मा का विद्रोह" कहा था (1976: 64)। सी.एफ. एंड्रूज ने टैगोर के विषय में ऐसे ही विचार व्यक्त किए। नेहरू ने 1961 में लिखा "टैगोर के लेख *दि काल ऑफ ट्रूथ* (सत्य की पुकार) और गांधी के उत्तर को उनके साप्ताहिक *यंग इंडिया* जिसमें उन्होंने 'महान प्रहरी' (*The Great Sentinel*) कहा था, आश्चर्यजनक रूप से पठनीय है। इनसे सत्य के दो पक्षों का पता चलता है जिनमें से किसी की भी उपेक्षा नहीं की जा सकती है (डाल्टन वही: 2004)।" टैगोर की भूमिका आलोचनात्मक भूमिका थी परन्तु भारत में वे राष्ट्रवादी लहर के सही प्रेक्षक थे जिन्हें वे लोगों के लिए तर्क और सरोकार पर आधारित बनाना चाहते थे। उन्होंने लोकतंत्र की तब आलोचना की जब उन्हें महसूस हुआ कि महात्मा इन मोर्चों और उद्देश्यों से हट रहे हैं। उन्होंने न केवल आलोचना की अपितु गांधी की अवधारणा को वैकल्पिक अवधारणा भी प्रदान की। उन्होंने उनकी महानता के प्रति भी आभार व्यक्त किया और जातिवाद, छूआछूत और सांप्रदायिकता से संघर्ष करने में उनकी भूमिका की प्रशंसा की परन्तु वे साथ ही गांधी की योजनाओं की कमजोरियों को बताने में भी नहीं हिचके। उदाहरण के लिए, उन्होंने *वर्धा योजना* के नाम से विख्यात 1937 की महात्मा गांधी की बुनियादी शिक्षा योजना की दो आधारों पर आलोचना की। पहले, उन्होंने व्यक्तित्व के विकास पर भौतिक उपयोगिता की श्रेष्ठता की अनिवार्यता पर प्रश्न किया। दूसरे, उनका मानना था कि ग्रामीण गरीबों के लिए विशेष प्रकार की शिक्षा उनके व्यवसाय (vocation) की पसंद को सीमित कर देगी और यह "दुख की बात है कि हमारी आदर्श योजना में शिक्षा गरीबों को कम मात्रा में थोड़ा-थोड़ा करके वितरित की जानी चाहिए। उन्होंने बुनियादी शिक्षा की कमी को भारत के अनेक सामाजिक और आर्थिक कष्टों का मूलभूत कारण बताया और जीवंत और सही विद्यालयों की माँग की।

टैगोर में गांधी के दृष्टिकोण की कमियाँ बताने में विरोध करने का साहस था। उनकी कुछ आलोचनाएँ प्रमाणों पर आधारित हैं, अतः पिछले पांच दशकों के अनुभव के साथ विशेषकर ग्रामीण पुनर्निर्माण शिक्षा जैसी हमारी कमियों के प्रमुख क्षेत्रों में उन्हें जोड़ने तथा उत्कृष्ट और गरिमापूर्ण जीवन जीने के लिए ग्रामीण गरीबों को आवश्यक प्रोत्साहन प्रदान करने का समय आ गया है।

13.6 बोल्शेविक विचारधारा का विश्लेषण (ANALYSIS OF BOLSHEVISM)

टैगोर ने अनेक बार यूरोप और संयुक्त राज्य की यात्रा की परन्तु वह केवल एक बार ही सोवियत रूस गए जब वे सत्तर वर्ष के थे और उन्होंने इस यात्रा को एक तीर्थयात्रा समझा तथा महसूस किया कि यदि वह नहीं जाते तो उनकी जीवन अधूरा ही रहता। यह दौरा केवल दो सप्ताह के लिए था और वे वहाँ कहीं और न जाकर मास्को में ही थे। *लैटर्स फ्रॉम रशिया* (*Letters from Russia*) ने उनकी स्मृतियों को दर्शाया। यह उनका यात्रा वृतांत (travelogue) ही नहीं है बल्कि उन्होंने वहाँ जो पसंद - नापसंद किया, उसका विचारशील लेखा-जोखा प्रस्तुत करता है। अधिकांश पत्र सोवियत संघ छोड़ने के बाद लिखे गए थे। वहाँ जाने से पहले, टोक्यो में एक दिलचस्प घटना घटी जहाँ कोरिया के एक

युवक ने टैगोर के साथ बातचीत करना शुरू कर दिया जिसे बाद में उसने स्वयं रिकार्ड किया। प्रश्नोत्तर नए सोवियत समाज के अभ्युदय के इर्द-गिर्द घूमते रहे। इस वार्तालाप में, कोरियावासी ने गरीबों और अमीरों के बीच वैमनस्य तथा क्रांति की अपरिहार्यता के प्रश्न पर जोर दिया। इस वार्तालाप के कुछ महीनों बाद, टैगोर सोवियत संघ गए। वह कोरियाई युवक की तरह अभिभूत नहीं थे क्योंकि नई समाजवादी सत्ता द्वारा प्रचारित की जा रही नई संस्कृति के बारे में उन्हें कुछ संदेह था। उन्होंने नए समाज की स्थापना करने के सोवियत प्रयासों की सराहना की जो साधारण लोगों को शिक्षा, कृषि, स्वास्थ्य और उद्योग जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्रों में सामूहिक उद्यम (enterprises) आरंभ करने के लिए अधिकार प्रदान कर रहा था।

टैगोर ने विश्वव्यापी मानव दुख को बोल्शेविक विचारधारा के उदय का कारण बताया परन्तु बाद में शासन के हिंसा, क्रूरता और दमनात्मक नृंशसता के प्रयोग की निंदा भी की। इसका बलात् सौहार्द अनिश्चित आधारों पर टिका हुआ था। नेता और अनुयायियों के बीच संपर्क भ्रामक और अधूरा था तथा अशांति का लगातार स्रोत था। इसके अतिरिक्त, उन्होंने कहा कि "निष्क्रिय अनुसरण की आदत *मस्तिष्क* और चरित्र को कमजोर कर देती है। इसकी सफलता स्वयं पराजित कर देती है।" हिंसा का त्याग करने में टैंगोर और गांधी के बीच दृष्टिकोण में समानता है। दोनों ने ही बोल्शेविक प्रथा से इसके मुख्य रूप से महिमामंडन और हिंसा के प्रचार के कारण अपने आपको दूर रखा है।

टैगोर ने इस बात की प्रशंसा की कि बोल्शेविकों ने जार शासन की अनेक कुप्रथाओं को समाप्त कर दिया परन्तु विचार के दमन की प्रथा को जारी रखा। उन्होंने बोल्शेविकों को इस प्रथा को समाप्त करने की सलाह दी। वह सदा निर्विवाद निष्ठा के विरुद्ध रहे जो भारत में गांधी के नेतृत्व की उनकी आलोचना रही। मस्तिष्क (मन) की स्वतंत्रता के महत्व में विश्वासकर्ता के रूप में, वे सोवियत व्यवस्था में मतभेद (असंतोष) के दमन के खतरों और वैकल्पिक दृष्टिकोणों को आसानी से देख सकते थे। वे क्रोध और वर्ग घृणा (class hatred) के प्रचार के विरुद्ध थे जिसकी सोवियत संघ ने शिक्षा दी थी और साथ ही वे मानते थे कि किसी भी अच्छे समाज को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के माध्यम से मतभेद की मौजूदगी को अवश्य स्वीकार करना चाहिए। उनकी प्राथमिक रुचि नई शैक्षिक व्यवस्था में थी और वे उस उत्साह से खुश थे जिसके साथ यह पूरे रूसी समाज में फैली। उपलब्धि केवल संख्या में ही नहीं थी बल्कि उसकी तीव्रता में थी जिसने आत्म-सम्मान की भावना पैदा की थी। परन्तु उनकी अंतर्दृष्टि से व्यवस्था की प्रमुख त्रुटियाँ छिपी न रह सकीं क्योंकि इस व्यवस्था को उस सांचे में ढाल दिया था जहां मानवता एक जीवंत मस्तिष्क होता है तथा उनका मानना था कि "या तो साँचे के टुकड़े-टुकड़े हो जाएँगे या मानव का मस्तिष्क गतिहीन होकर मर जाएगा अथवा मानव एक मशीनी गुड़िया में बदल जाएगा।" उन्होंने बोल्शेविक विचारधारा को एक बीमार समाज के लिए डाक्टरी उपचार माना तथा इसे सभ्य समाज की स्थायी विशेषता नहीं समझा।

सोवियत संघ के बारे में टैगोर का विवरण संतुलित था जिसने नकारात्मक और सकारात्मक पक्षों पर प्रकाश डाला। इस संबंध में टैगोर ने सिडनी और बिएटरीस वैब जिन्होंने 1930 के दशक में सोवियत संघ का दौरा किया था, की अपेक्षा एच.जी.वैल्स का अधिक समर्थन किया। वैल्स के विपरीत वैब ने सोवियत समाज के नकारात्मक पक्षों की उपेक्षा की।

13.7 सारांश

टैगोर एक व्यावहारिक आदर्शवादी थे। उनके बारे में मुल्क राज आनंद ने लिखा है:

.... वे एक स्वप्नद्रष्टा थे जिनका विश्वास था कि एक भावना में एक बहुराष्ट्रीय सभ्यता एक ऐसा मार्ग

है जिसके माध्यम से व्यक्ति और राष्ट्र अपनी शक्ति का समर्पण करते हैं। एक भारतीय के रूप में वे जानते थे कि वास्तव में स्वतंत्रता प्रेमी राष्ट्र लालच और लूट पर बने अनेक आक्रामक राष्ट्रों द्वारा बाधित कर दिए गए। अतः उन्होंने अपने समय के साम्राज्यवादियों से उस लचीलेपन के साथ संघर्ष किया जिसने उनके राजनीतिक चिंतन को विशिष्ट यथार्थवाद (peculiar realism) के साथ-साथ एक स्वप्नद्रष्टा का गुण भी प्रदान किया (1967:31)।

उन्होंने केवल सोचा ही नहीं बल्कि प्रयोग करने का प्रयास भी किया और अपने विचारों को व्यवहार में लाए। विरोध के साहस के साथ, उन्होंने राष्ट्रवाद की पद्धति (cult), राष्ट्रों के बीच असमानता, और साम्राज्यवाद जिसमें सांस्कृतिक साम्राज्यवाद शामिल हैं और औपनिवेशिक विश्व में जहाँ अधिकतर लोग सुविधावंचित जीवन जीते हैं, के विरुद्ध आवाज उठाई। उन्होंने मानव तर्क-शक्ति में कभी भी आशा नहीं छोड़ी और प्लैटो की तरह सोचा 6% शिक्षा ही मानव उत्कृष्टता (excellence) और श्रेष्ठ भविष्य की कुंजी है। अमर्त्यसेन (2000: 106) ने उचित ही कहा है कि "रवीन्द्रनाथ ने प्रत्येक मुद्दे पर खुली बहस पर बल दिया और यांत्रिक (मशीनी) सूत्र पर आधारित निष्कर्षों पर विश्वास नहीं किया चाहे वह सूत्र आकर्षक ही क्यों न दिखाई देता हो .... उन्होंने लगातार प्रश्न पूछा कि जो कुछ प्रस्तावित किया जा रहा है, क्या इसे चाहने का हमारे पास पर्याप्त कारण है और क्या हर बात का ध्यान रखा जा रहा है। विवेकशक्ति को अतीत से आगे जाना है। इस विवेकशक्ति की संप्रभुता - स्वतंत्रता की निडर विवेक शक्ति में ही निहित है कि हम रवीन्द्रनाथ टैगोर की अमर वाणी में ही पा सकते हैं।

वैश्वीकरण (globalisation) का तंत्र राष्ट्रों के बीच एक नई भागीदारी सृजित करने और लोगों का आधार समानता और साझी समृद्धि पर होने के बजाय पुराने साम्राज्यवादी समय के आधिपत्य और शोषण की भावना को बनाए रखने का एक नया उपाय है। यह उन्नत देशों की पुरानी और अदूरदर्शी नीति के बने रहने के कारण ही है कि विश्व बंधुता के दर्शन (विचारधारा) को दोयम दर्जा दिया गया है। वैश्वीकरण की प्रक्रिया जारी है। इसके बारे में टैगोर ने पश्चिम पर आरोप लगाया कि यह अपनी स्वतंत्र करने की ताकत के बजाए अपनी शक्ति का प्रदर्शन कर रहा है। जब तक इसे सुधारा नहीं जाता, तब तक पश्चिम को विश्व के लगभग अस्सी प्रतिशत लोगों द्वारा संदिग्ध ही ठहराया जाता रहेगा। यदि कानून और व्यवस्था क्रियान्वित करनी है तो पश्चिम के मानवतावादी पक्ष को अग्रिम पंक्ति में आना पड़ेगा। यह केवल तब ही संभव होगा जब पश्चिम टैगोर द्वारा बताए गए अपने संकीर्ण राष्ट्रवादी सरोकारों को त्याग देगा। उन्होंने मानवतावाद के तर्क और विज्ञान की आशा की और यह चाहा कि इस संबंध में पश्चिम रास्ता दिखाए। दो विश्वयुद्धों और विश्व समुदाय के निरंतर शांतिपूर्ण अभ्युदय के लिए बढ़ती आवश्यकता को देखते हुए सुविधासंपन्न लोगों और सुविधावंचित लोगों के बीच दूरी कम करने की आवश्यकता है। टैगोर द्वारा की गई समीक्षा और आलोचना इस सुधार की शुरुआत हो सकती है।

13.8 अभ्यास प्रश्न

1) रवीन्द्रनाथ टैगोर के स्वतंत्रता और आत्मविकास के विचार की चर्चा कीजिए।

2) राष्ट्रवाद की टैगोर की आलोचना को स्पष्ट कीजिए।

3) टैगोर और गांधी के बीच बुनियादी असहमति पर चर्चा कीजिए और उनमें अंतर स्पष्ट कीजिए।

4) बोल्शेविक विचारधारा पर टैगोर के विचारों का मूल्यांकन कीजिए।